16.0 पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन में वर्णित शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में उपादेयता

• **निधि राय,** असिस्टेंट प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र दिग्विजय नाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर उत्तर प्रदेश
ई.मेल- nidhirai1504@gmail.com

सारांश

सहस्त्र वर्षों की परतंत्रता का दंश झेलने के पश्चात नव स्वतन्त्र भारत को ऐसे सिद्धांत की आवश्यकता थी जो उसके प्राचीन गौरवशाली अतीत की आधारशिला पर समृद्धिशाली भारत का निर्माण कर सके।अपनी बौद्धिक संपदा के संरक्षण के साथ ही व्यक्ति एवं राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो सके। यह कार्य शिक्षा द्वारा किया जा सकता था परंतु शिक्षा नीति-नियंता भी उसी हीन भावना के शिकार थे जो अंग्रेजों ने भारतीयों में भर दी थी। परिणामस्वरूप मैकाले द्वारा दी गई शिक्षा पद्धति को ही अपनाया गया और भारतीय संस्कृति, परंपरा की पूर्ण रूप से अवहेलना हुई। जिसका दुष्परिणाम हम आज भी भुगत रहे हैं, जब हम पश्चिमी देशों के अनुगामी बनकर रह गए हैं। यदि हमें अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा पुनः हासिल करनी है तो हमारी शिक्षा पद्धति को हमारे प्राचीन आदर्शों पर आधारित करना होगा। अतः वर्तमान भारत राष्ट्र के उज्जवल भविष्य के लिए एक ऐसे वैचारिक दर्शन की आवश्यकता है जो राष्ट्रीय परिवेश के सर्वथा अनुकूल, सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से लाभकारी तथा राष्ट्र को परम वैभव तक पहुंचाने में समर्थ हो। हमारे पास वह वैचारिक धरोहर एकात्म मानव दर्शन के रूप में संकलित है। पं० दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित, मानव प्रवृत्तियों का सूक्ष्म सार एवं संपूर्ण मानव को सुख समृद्धि के मार्ग पर ले जाने वाला शाश्वत दर्शन है। इस दर्शन के आधार पर नए समाज की रचना की आवश्यकता आज सर्वथा महसूस की जा रही है।

प्रमुख शब्दावली - एकात्म मानववाद, सर्पिलाकार मंडलाकृति, पुरुषार्थ

प्रस्तावना

सभ्यता के उषाकाल से ही भारत ने ज्ञान के महत्व को समझ लिया था। भारत ने धर्म और दर्शन के क्षेत्र में इतना विकास किया कि वह सहस्त्र शताब्दियों तक विश्व गुरु के रूप में प्रतिष्ठित रहा ,किंतु इतिहास ने भारत को एक परतंत्र राष्ट्र बना दिया, जिससे भारतीय बौद्धिक विरासत तथा भारतीय दर्शन के मूल तत्व को अप्रमाणित घोषित कर दिया गया। परतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत को एक दास की तरह शासक राष्ट्र की भाषा एवं संस्कृति को स्वीकार करनी पडी। तत्कालीन परिस्थितियों के वशीभूत होकर हम स्वयं अपनी भाषा ,संस्कृति और परंपराओं को भूलने लगे तथा पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करने लगे। इस प्रकार भारतीय दर्शन तथा इतिहास ने अपने गौरवशाली अतीत को खो दिया।

उत्तम राष्ट्र का निर्माण कभी भी उधार की विचारधारा को अपनाकर नहीं हो सकता। "प्रत्येक देश की अपनी विशेष ऐतिहासिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति होती है और उस समय उस देश के जो भी नेता और विचारक होते हैं वह उस परिस्थिति में से देश को आगे बढ़ाने की दृष्टि से मार्ग निर्धारित करते हैं।" (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय, खंड 12)। अतः हमें भारतीय परिस्थितियों के अनुसार ऐसे मार्ग की आवश्यकता थी जो भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित मूल्यों पर आधारित हो, यहां की सांस्कृतिक विविधता में अंतर्भूत एकता को सुदृढ़ कर सके, राष्ट्र के विकास में समर्थ हो। ऐसी परिस्थिति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद के विचार को राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया जो कर्म चेतना से युक्त, राष्ट्रीय संस्कृति के अनुकूल, शाश्वत संपूर्णता की प्राप्ति में सहायक है।

जीवन परिचय

समाज में तीन प्रकार के व्यक्तित्व होते हैं एक जन्म से महान, दूसरे जिन्हें शिक्षण प्रशिक्षण से महान बनाया जाता है एवं तीसरे जो अपने कर्तव्य बल पर महान बने। अपने समय के सबसे बड़े संगठनकर्ता एवं दार्शनिक बने। गांधी नेहरू और पटेल के पश्चात यदि किसी का नाम आता है तो वह दीनदयाल उपाध्याय जी का ही आता है (अनिल दत्त मिश्र, 2019)

एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के नगला चंद्रभान नामक स्थान पर 25 सितंबर 1916 को हुआ था। 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' की तर्ज पर इनकी बुद्धि की कुशाग्रता बचपन से ही प्रदर्शित होने लगी थी। परंतु विधाता द्वारा समय - समय पर इनकी परीक्षा ली जाती रही और एक-एक कर उनके सभी अपने उनका साथ छोड़कर जाने लगे। पहले पिता, फिर माता, नाना ,वात्सल्य से परिपूर्ण नानी और यहां तक की भाई भी कम उम्र में ही साथ छोड़कर गोलोकवासी हो गए। साधारण मनुष्य इस परिस्थिति में बिखर जाता, परंतु दीनदयाल जी को शायद परमात्मा ने विशेष कार्य के गढ़ा था। परिस्थितियों से हार माने बिना, तमाम झंझावतों के बीच इन्होंने अपनी शिक्षा अनवरत्जारी रखी। मैट्रिक की परीक्षा गोल्ड मेडल के साथ उत्तीर्ण करने के उपरांत इंटरमीडिएट की परीक्षा में भी पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। बी.ए. की परीक्षा कानपुर के S. D. कॉलेज से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। M.A. की परीक्षा हेतु सेंट जॉन्स कॉलेज आगरा में प्रवेश लिया परंतु बीमार बहन की मृत्यु के कारण परीक्षा में सम्मिलित ना हो सके।

कानपुर आगमन पंडित जी के जीवन का एक मुख्य पड़ाव रहा। यहीं से इनके जीवन की दिशा निर्धारित हो रही थी। बालूजी महाशब्दे की प्रेरणा से यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए तथा संघ के आजीवन प्रचारक बन गए। संघ के माध्यम से ही पंडित जी का भारतीय राजनीति में पदार्पण हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई तो इसमें अति महत्वपूर्ण दायित्व महामंत्री पद पंडित दीनदयाल जी के कंधों पर दिया गया। पंडित जी ने संघ के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने हेतु पूरे भारत का भ्रमण किया। अपने प्रवास के दौरान उन्होंने भारतीयों को एकता के सूत्र में बांधने हेतु एकात्म मानव दर्शन की अवधारणा का प्रतिपादन किया। सन् 1952 में जनसंघ की स्थापना से लेकर से सन् 1967 तक पंडित जी महामंत्री के पद के दायित्व का भली प्रकार निर्वहन करते रहे। सन् 1967 में कालीकट के अधिवेशन में भारतीय जनसंघ का अध्यक्ष एकमत से चुना गया। अध्यक्ष के रूप में जनसंघ को बुलंदियों तक पहुँचाने का स्वप्न देख रहे पंडित दीनदयाल जी की मात्र 43 दिनों बाद हत्या कर दी गई और भारत माँ ने अपना एक लाल सदा के लिए खो दिया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने पत्रकारिता तथा साहित्य सृजन का कार्य सफलतापूर्वक किया। अपने जीवन का प्रत्येक क्षण इन्होंने समाज सेवा में लगाया विश्व भर में चलने वाले आज के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक वादों से ऊपर उठकर इन्होंने एक अनूठी व सारपूर्ण एकात्म मानव दर्शन की अभिनव एवं व्यवहारवादी परिकल्पना दी जिसमें मानव के सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया गया है। यह एक ऐसा दर्शन है जिसमें दृढ़ चरित्र, शरीर व मन की एकात्मता एवं धर्म के शाश्वत मूल्यों को समुचित स्थान प्राप्त हुआ है।

दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद

भारत में दर्शन का उद्गम असंतोष या अतृप्ति से माना जाता है। जब मनुष्य वर्तमान से असंतुष्ट होकर श्रेष्ठतर की खोज करता है, यही खोज दार्शनिक गवेषणा कहलाती है। एकात्म मानव दर्शन की उत्पत्ति भी तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों में असंतुष्टि का ही

परिणाम थी। नव स्वतंत्र भारत के समक्ष विश्व की दो परस्पर विरोधी विचारधाराएं पूंजीवाद और साम्यवाद में से किसी एक को चुनने की चुनौती थी। यह दोनों ही विचारधारा उनके उद्भव राष्ट्र की परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुए थी। जो भारत की संस्कृति, आध्यात्मिकता एवं परम्पराओं आदि के कदापि समीचीन नहीं थी। दोनों ही विचारधाराओं से असंतुष्ट होकर पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय जन-जीवन को उनके प्राचीन शाश्वत मूल्य के पथ पर चलने का आह्वान किया तथा पूंजीवाद और साम्यवाद के स्थान पर एकात्म मानव दर्शन सामने रखा। "हम न पूंजीवाद को मानते हैं न समाजवाद को। हम तो एकात्मवाद को मानते हैं। एकता-संघता को मानते हैं। हम में एक आत्मा है। इस एकात्म्य में दैवी संपत्ति है। हम दैवी भावों को प्रमुख मानकर, आधार मानकर प्रगति करते हैं।"(दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 11)। एकात्म मानव दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति की एकात्मवादी प्रवृत्ति है, जो परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर अनुकूलन एवं सहयोग के आधार पर चलती है। यह जीवन की विभिन्न संस्थाओं और समाज के विभिन्न अंगों के दृश्य भेद को स्वीकारते हुए उनके प्रत्येक स्तर पर समानता की खोज करती है और उनमें समन्वय स्थापित करने का प्रयास करती है। एकात्म मानव दर्शन ना केवल भारतीय संस्कृति का युगानुकूल विवेचन है बल्कि वैश्विक विचारों के लिए पूरक भारतीय चिंतन भी है।पूंजीवादी आर्थिक चिंतन मनुष्य को एक धन लोलुप प्राणी मानकर चलता है जो सदैव दूसरे पर नियंत्रण तथा एकाधिकार द्वारा मनमानी कीमत वसूलने का साधन मानता है,जबकि एकात्म मानव स्वयं समाज का सदस्य है। एकात्म मानव को सबके सुख में ही अपना सुख मिलता है। "एकात्म मानव विचार भारतीय और भारत-वाह्य सभी चिंतन धाराओं का सम्यक आकलन करके चलता है। उनकी शक्ति एवं दुर्बलताओं को भी परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है जो मानव को अब तक के उसके चिंतन,अनुभव और उपलब्धि की मंजिल से आगे बढ़ा सके।"(दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 11)

एकात्म मानव दर्शन में दो मुख्य शब्द एकात्म और मानव है अर्थात् यह ऐसी विचारधारा है जिसका केंद्र मानव है। यह दर्शन मानव को एकात्म मानता है। एकात्म ना बांटी जा सकने वाली इकाई को कहते हैं। इस दर्शन के अनुसार व्यक्ति व समाज को अलग नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति समाज का एक अंग है। अतः वह केवल 'मैं' तक सीमित नहीं रह कर 'हम 'से संबंध रखता है। यह एक ऐसी विचारधारा है जिसके केंद्र में व्यक्ति होता है ,व्यक्ति से घर परिवार ,घर परिवार से समाज ,फिर समाज से राष्ट्र, राष्ट्र से विश्व और विश्व से अनंत ब्रह्मांड जुड़ा होता है। इसलिए एक के विकास से ही दूसरे का विकास संभव है।

एकात्म मानववाद विचारधारा में व्यक्ति को केंद्रीय ईकाई माना जाता है । पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि व्यक्ति केवल शरीर नहीं है अपितु शरीर, मन, आत्मा और बुद्धि का समुच्चय है जिसके कारण उसमें मैं के स्थान पर हम का भाव परिलक्षित होता है। इनका मानना है कि व्यक्ति के चरित्रवान संगठित तथा सुसंस्कृत होने पर ही सनातन सत्य की प्राप्ति संभव है। भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थ धर्म,अर्थ एवं काम और मोक्ष है। इन पुरुषार्थ चतुष्टय से संयुक्त मानव संपूर्ण समाज का एक साथ प्रतिनिधित्व करता है। एकात्म मानववाद एक ऐसी धारणा है जो सर्पिलाकार मंडलाकृति द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। जिसके केंद्र में व्यक्ति, व्यक्ति से जुड़ा घेरा घर - परिवार, परिवार से जुड़ा घेरा समाज, राष्ट्र ,विश्व और अनंत ब्रह्मांड को अपने में समाए हुए हैं। अतः हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए जो अनेक समष्टि का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है।

राष्ट्र संबंधी विचार

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन में राष्ट्र के स्वतंत्र व्यक्तित्व के बारे में चिंतन किया गया है। इसके अनुसार हमारे राष्ट्र की अपनी एक प्रकृति, संस्कृति तथा जीवन मूल्य है जिसे इस देश ने परिवर्धित किया है। इस राष्ट्रीय प्रवृत्ति के साथ ही होने

वाला विकास यहां के लोगों के लिए सुखद एवं संतोषप्रद होगा।यूनान, रोम आदि प्राचीन राष्ट्र के उदाहरण द्वारा पंडित जी ने स्पष्ट किया कि कोई भी राष्ट्र मृतप्राय हो जाता है यदि वहां की संस्कृति नष्ट हो जाए। राष्ट्र कुछ व्यक्तियों का समूह अथवा भूमि का टुकड़ा मात्र नहीं है, बल्कि राष्ट्र की संस्कृति ही उसका प्राण तत्व है। पंडित जी के शब्दों में "संस्कृति किसी राष्ट्र की आत्मा होती है और कोई भी राष्ट्र तभी तक जीवित माना जा सकता है जब तक उसकी आत्मा उसके भीतर विद्यमान है। केवल वाह्य उपकरणों से राष्ट्र जीवित नहीं रहता।" (कौशल किशोर मिश्र, 2021)

पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण, आत्म विस्मृति एवं हीनता की भावना राष्ट्रीय विकास के लिए क्लेशमय सिद्ध होगी। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक नागरिक स्वयं का एक राष्ट्र के रूप में आत्म अवलोकन करे, चिंतन करें एवं प्रत्यक्ष आचरण के लिए अग्रसर हो। एक नागरिक जब तक अपना आत्म साक्षात्कार नहीं करेगा, आत्म स्वरूप को नहीं पहचानेगा तब तक उसकी चेतना को जागृत नहीं किया जा सकता ,उसके शुभ-अशुभ गुणों का आह्वान नहीं किया जा सकेगा। परिणाम स्वरूप एक परिपूर्ण राष्ट्र निर्माण संभव नहीं हो सकेगा

शैक्षिक विचार

एकात्म मानव दर्शन के अनुसार शिक्षा द्वारा मूल तत्व की एकात्मता का ज्ञान कराया जाना चाहिए। जब समग्र सृष्टि का रचनाकार एक है तो निश्चय ही सृष्टि के प्रत्येक अंग का मूल तत्व एक ही होगा। हमारी शिक्षा समाज में भेद निर्माण करने वाली ना होकर एकात्म भाव का निर्माण करने वाली होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश वर्तमान भारत के पब्लिक स्कूल इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते। अतः शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। सभी शिक्षण संस्थाओं में गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जिससे मानव मात्र में एकात्मता का भाव उत्पन्न हो सके। पंडित दीनदयाल जी भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा पद्धति को राष्ट्र की उन्नति हेतु आवश्यक मानते थे।

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो बालक की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक और सामंजस्य पूर्ण विकास करने में अपना योगदान देती है ।शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व का इस प्रकार विकास करती है जो उसे जीवन के कर्तव्यों एवं दायित्वों के निर्वहन के लिए तैयार करता है। शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार एवं दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करती है जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं संपूर्ण विश्व के लिए हितकर होता है। स्पष्टतया समाज एवं राष्ट्र की सेवा के लिए शिक्षा अनिवार्य है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार बच्चों की शिक्षा समाज के स्वयं के हित में है। शिक्षा और संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। एकात्म मानव दर्शन के अनुसार संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र बिंदु मानव को मानकर उसके विकास हेतु शिक्षा की व्यवस्था समाज को करनी चाहिए। शिक्षा प्राचीन भारतीय गुरुकुल की भांति निःशुल्क होनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति शिक्षित होने पर समाज के हित के लिए कार्य करेगा। जो कार्य समाज के हित के लिए हो उसके लिए शुल्क लेना अनुचित है। "बच्चे को शिक्षा देना तो समाज के अपने ही हित में है। जन्म से तो मानव पशुवत् पैदा होता है। शिक्षा और संस्कार से तो वह समाज का अभिन्न घटक बनता है जो काम समाज के अपने हित में हो उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उल्टी बात है।"(दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खंड 12)

उपाध्याय जी के अनुसार समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक के रूप में कार्य करता है और वह नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी से प्राप्त ज्ञान की निधि का हस्तांतरण करता है। इस प्रकार प्राप्त पूंजी में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुभव के अनुसार वृद्धि करनी चाहिए जिससे यह ज्ञान निधि और भी समृद्ध होती जाए। शिक्षा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संग्रहित संस्कार, संस्कृति, कला, नैतिकता, परंपराएं हस्तांतरित होता है ।इसके द्वारा व्यक्ति अपनी संस्कृति एवं परंपराओं से परिचित होता है जिससे कि वह अपने समाज के योग्य नागरिक के रूप में विकसित होता है।

दीनदयाल जी भारत की समस्या का सर्व प्रमुख कारण बेरोजगारी को मानते थे, जिसके समाधान हेतु वे शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की मांग कर रहे थे। बेरोज़गारी की समस्या अपने आप में कई समस्याओं की जननी है। अतः शिक्षा नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि शिक्षित युवक बाबूगिरी की ओर ना दौड़ कर स्वयं अपने लिए रोजगार का सृजन कर सकें। उनके हाथ में कुछ ऐसा हुनर दिया जाना चाहिए जिससे कि वे जीविकोपार्जन कर सके। "पढ़े लिखे लोगों की शिक्षा के लिए औद्योगिक शिक्षा केंद्र खोले जाएं जहां वे शिक्षा के साथ-साथ काम भी कर सकें। यह केंद्र सरकार के द्वारा बड़े पैमाने पर खोले जाने चाहिए।" (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय, खंड 2)

शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास हेतु सबसे शक्तिशाली माध्यम है। हमारी प्राचीन संस्कृति उद्घोष करती है कि विद्यावान व्यक्ति विनयशील होता है, विद्या ददाति विनयं। परंतुजोशिक्षा बालक सुसंस्कृत ना बनाकर केवल आजीविका निर्वहन के योग्य बनाती है ऐसी शिक्षा बालक, समाज एवं राष्ट्र सभी के लिए हानिकारक है। हमारी शिक्षा पद्धति वसुधैव कुटुंबकम की हमारी प्राचीन संस्कृति को आत्मसात् करने वाली होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति पुरुषार्थ चतुष्टय की भावना को लेकर चलती है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए जिससे कि यह चारों पुरुषार्थ संतुष्ट हो सके।

वर्तमान परिदृश्य

दुर्भाग्यवश वर्तमान शिक्षा पद्धति अर्थ प्रधान होकर रह गई है जिससे मनुष्य एवं पशु में कोई अंतर नहीं रह गया है। मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने के लिए शिक्षा का केंद्र सिर्फ अर्थ ना होकर चारों पुरूषार्थ होने चाहिए। हमारे सांस्कृतिक मूल्य हमें एकात्म का भाव सिखाते हैं। प्राचीन काल में गुरु शिक्षा देते समय अपने विद्यार्थियों से किसी भी प्रकार का भेदभाव न रखकर एकात्म भाव रखते थे। एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति का भाव रखते हुए शिक्षा की प्रक्रिया आगे बढ़ती थी। संस्कार एवं मूल्य शिक्षा के मुख्य मूल तत्व थे। यही संस्कार एवं मूल्य हमारी संस्कृति को विश्व में श्रेष्ठतम बनाते थे एवं हमारा राष्ट्र विश्व गुरु के पद को सुशोभित करता था ,परंतु दासता के लगभग 1200 वर्षों ने हमारी मानसिकता को इस प्रकार बदल दिया कि हम अभी भी उसी हीन भावना के शिकार हैं जो परतंत्रता ने हमारे मन में भर दी थी। आज भी हमारे समाज में अंग्रेजी भाषा जानने वाला अपने समकक्ष अंग्रेजी न जानने वाले से श्रेष्ठ समझा जाता है।साथ ही अंग्रेजी ना जानने वाला स्वयं को निम्नतर समझता है। यह हीनता की भावना, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा पर गर्व न कर सकने का भाव हमें परतंत्रता के पश्च प्रभाव के स्वरूप में मिला है। इस भाव का मूल कारण हमारी वर्तमान शिक्षा का मूल्यविहीन होना है। आज पश्चिमी का अंधानुकरण करना ही आधुनिकता की पहचान बन गया है। निश्चय ही किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के लिए यह सुखद भविष्य का संकेत नहीं है।

आज की भौतिकवादी सोच ने जीवन की समग्रता को बढ़ावा ना देकर केवल एक पक्ष का विकास किया है। परिणामस्वरूप भौतिक संस्कृति एवं मूल्य संस्कृति के बीच खाई गहरी होती जा रही है। जो किसी भी समाज के लिए उत्तम स्थिति नहीं कही जा सकती। वसुधैव कुटुंबकम की भावना वाले इस देश में आज क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, जल विवाद जैसी समस्या विद्यमान है तो इसका एक मात्र कारण 'अयं निजः परो वेति' का भाव है। यह मार्ग विकास का नहीं बल्कि विनाश की ओर अग्रसर करने वाला मार्ग है। आज समस्त विश्व के समक्ष पहचान का संकट मंडरा रहा है। अमेरिका जैसे देश में विद्यार्थी अपने साथियों की निर्मम हत्या कर दे रहे हैं। हमारे देश में भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। हाल ही में एक ऐसी घटना देखने को मिली जिसमें 1 दिन के अवकाश की इच्छामात्र से एक मासूम की जान उसी विद्यालय के छात्र ने ले ली। इस प्रकार की हिंसक प्रवृत्ति के लिए कहीं न कहीं हमारी शिक्षा पद्धति भी जिम्मेदार है। छात्रों में नैतिक मूल्य, वृत्त की शुद्धता पर जोर ना देकर शिक्षा वित्त प्रधान हो गई है।

आज की शिक्षा सामाजिक हित को गौड़ मानकर व्यक्तिगत हित को सर्वोपरि मानने वाली है। अधिक से अधिक धन कमाकर सुख, ऐशो -आराम की प्राप्ति की इच्छा की परिणति पारिवारिक विघटन ,चारित्रिक दुर्बलता एवं हिंसक प्रवृत्ति आदि के रूप में हो रहे हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान परिस्थितियों में यदि हमें इन दुष्प्रवृत्तियों से नई पीढ़ी का संरक्षण कर एक स्वस्थ समाज की संरचना करनी है तो इसके लिए हमें भारतीय मूल्यों एवं संस्कारों से युक्त एकात्म दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली को अपनाने की ओर अग्रसर होना ही होगा। निश्चय ही एकात्म मानव दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाते हुए छात्रों में भारतीय होने का गर्व पैदा करने के साथ ही ऐसे भाव प्रदान करेगी जिससे वे मानवाधिकारो, स्थाई विकास एवं वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध होंगे तथा सही मायने में वैश्विक नागरिक बन सकेंगे एवं हमारा देश निश्चय ही ज्ञान की महाशक्ति के रूप में स्थापित हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 12 ,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या 50

मिश्र अनिल दत्त, सिंह पद्म, गुप्ता जय (2019). दीनदयाल उपाध्याय एक अध्ययन, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली

शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 11 ,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या पन्द्रह वही, पृष्ठ संख्या उन्नीस

मिश्र कौशल किशोर (2021). पं०दीनदयाल उपाध्याय का सांस्कृतिकचिंतन, के के पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 53

शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 12 ,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या 90-91

शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खंड 2, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ 136

****